International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(1): 91-93

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(1): 91-93
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 18-11-2017
Accepted: 19-12-2017

डॉ० अर्चना पाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा, संस्कृत विभाग, आर०सी०ए० गर्ल्स (पी०जी०) कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ० अर्चना पाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्षा, संस्कृत विभाग, आर०सी०ए० गर्ल्स (पी०जी०) कॉलेज, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत

कालिदास द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में वर्ण परिवर्तन के कतिपय दृष्टान्त

डॉ० अर्चना पाल

प्रस्तावना

प्रत्येक भाषा के विकास के क्रम में यह देखने में आता है कि उसके शब्दों में कालान्तर में कुछ न कुछ वर्णों का परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन बड़ी धीमी गति से होता है और कभी–कभी तो किन्हीं वर्णों में परिवर्तन सैकडों वर्षों में प्रकट होता है। भाषा–वैज्ञानिकों द्वारा वर्ण–परिवर्तन के बहुत से कारण गिनाये गये हैं।

संस्कृत भाषा में वर्ण–परिवर्तन या ध्वनि.परिवर्तन की बात परम्परावादी व्यक्तियों को अटपटी लग सकती है, क्योंकि यह माना जाता है कि संस्कृत भाषा, मुख्यतया लौकिक संस्कृत, पाणिनिय व्याकरण के नियमों से बंधी हुई है और अधिकतर संस्कृत कवि और लेखक व्याकरण–सम्मत भाषा का व्यवहार करते रहे हैं। ऐसा होते हुये भी सहस्रों वर्षों के इतिहास में बहुत से संस्कृत शब्दों की वर्तनी में अन्तर आया है और वर्ण–लोप, वर्ण–विपर्यय, समाक्षर–लोप, मात्रा–भेद आदि घटित हुए हैं। कालिदास ने अपनी कृतियों में अपने काल में प्रचलित संस्कृत भाषा के स्वरूप को ग्रहण किया है। उसमें भी यह देखने में आया है कुछ शब्दों की वर्तनी दो प्रकार की प्रयुक्त की गयी है, जैसे कुछ शब्द कालिदास ने इकारान्त भी प्रयुक्त किये हैं और ईकारान्त भी। कुछ शब्दों में वर्ण–परिवर्तन कालिदास से भी पहले, पाणिनि के काल में ही, अथवा उससे भी पहले हो गये थे। प्रस्तुत शोध–पत्र में कालिदास द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में दिखाई पडने वाले कतिपय वर्ण–परिवर्तनों को दर्शाया गया है।

वर्णागम

जब किसी शब्द के आदि, मध्य या अन्त में कोई नया वर्ण आ जाता है तो उसे ''वर्णागम'' कहा जाता है। किसी शब्द में नये वर्ण का आगम अज्ञान अथवा सादृश्य के कारण हो सकता है। कालिदास की कृतियों में प्रयुक्त शब्दों में एक विसर्गागम का उदाहरण मिलता है।

निस्वन – निःस्वन

कालिदास ने ''निःस्वन''शब्द का ''ध्वनि'' अर्थ में प्रयोग किया है–

न वाहिनीनां पटहस्यनिःस्वनाः। कुमार0 14.47
सुखश्रवा मड्.गलतूर्यनिःस्वनाः। रघु0 3.19
सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः। रघु0 3.61

वस्तुतः संस्कृत में ''ध्वनि'' का वाचक ''निस्वन'' शब्द है। कालिदास ने इसका प्रयोग कई स्थलों पर ''ध्वनि'' अर्थ में किया है –

सवल्लकीकाकलिगीतनिस्वनैः। ऋतु0 1.8
पयोधरैर्भीमगभीरनिस्वनैः। ऋतु0 2.11

''निस्वन''के स्थान पर ''निःस्वन'' भ्रान्तिवश प्रचलित हो गया प्रतीत होता है। सम्भवतः विसर्ग.युक्त ''निः'' वाले किन्हीं शब्दों के सादृश्य से यह प्रचलित हुआ है। आप्टे के पी०के० गोडे द्वारा सम्पादित तीन भागों वाले संस्कृत–अंग्रेजी कोश में ''निःस्वन'' वि0का अर्थ ''ध्वनि–रहित'' और ''निःस्वन'' का अर्थ ''ध्वनि'' दिया है। वस्तुतः ''निःस्वन'' का ''ध्वनि–रहित'' अर्थ में प्रयोग ही अधिक संगत प्रतीत है।

''ध्वनि'' अर्थ में ''निस्वन'' के स्थान पर ''निःस्वनः'' का प्रचलन विसर्गागम के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि अमरकोश 1.6.23 में ''ध्वनि'' के वाचक शब्दों में ''निस्वन'' शब्द ही मिलता है –स्वाननिर्घोषनिर्ह्रादनादनिस्वाननिस्वनाः।

वर्ण–लोप

आद्य स्वर–लोप

कालिदास द्वारा प्रयुक्त शब्दावली में कुछ शब्द ऐसे मिलते हैं, जिनमें आद्य अर्थात् प्रारम्भिक अ वर्ण का लोप हो गया है।

अपिनद्ध–पिनद्ध

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 1.18के पश्चात् शकुन्तला का कथन है –अतिपिनद्धेनवल्कलेन प्रियंवदया नियन्त्रितोस्मि। यहाँ ''बांधा हुआ'' अर्थ में ''पिनद'' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसे ''अपि'' उपसर्ग–पूवर्क''नह्'' धातु से क्त प्रत्यय लगकर निष्पन्न माना जाता है। वैयाकरण भागुरि के अनुसार ''अव'' और ''अपि'' उपसर्गों के अ का विकल्प से लोप हो जाता है –वष्टिभागुरिरल्लोपमवाम्योरूपसर्गयोः। ''पिनद'' शब्द शाकु0 1.19य 7.2और कुमार05.78य 13.38 में भी प्रयुक्त हुआ है। ''अपि'' उपसर्ग–पूर्वक ''नह्'' धातु से बने हुये शब्दों में ''अपि'' के अ का लोप संस्कृत भाषा में प्रचलित हो गया होगा। उसे भागुरि वैयाकरण के नाम से व्याकरण–सम्मत कर लिया गया। यह उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में ''अपिनद्ध'' शब्द मिलता है। ऋग्वेद 10.68. 8और शतपथ–ब्राह्मण में ''अपिनद'' शब्द का प्रयोग हुआ है''अपिनद्ध'' के स्थान पर ''पिनद्ध'' का प्रचलन प्रयत्न–लाघव या मुख–सुख के कारण हुआ प्रतीत होता है।

अपिहित– पिहित

''अपि'' उपसर्ग–पूवर्क ''धा'' धातु से वत प्रत्यय होकर ''अपिहित'' शब्द बनता है। किन्तु भागुरि के नियम के अनुसार ''अपि'' के अ का विकल्प से लोप होकर ''पिहित'' शब्द ''आच्छादित'', ''अवरूद्ध'' आदि अर्थों में प्रचलित हो गया है। रघु0 1.80 में ''पिहित'' शब्द ''अवरूद्ध'' अर्थ में प्रयुक्त हुआ है–

भुजङ्. गपिहितद्वारं पातालमधितिष्ठति।
कुमारसम्भव में ''पिहित'' शब्द का ''आच्छादित'' अर्थ में प्रयोग किया गया है –
तस्याः स कण्ठे पिहितस्तनाग्रान्यधत्त मुक्ताफलहारवल्लीम्। कुमार0 9.24
तान् प्रज्वलत्फलमुखैर्विषमैः सुरारिनामाङ्ि.कतैः पिहितदिगन्तरालैः। कुमार0 17.4

समवर्ण–लोप

जब किसी शब्द में कोई वर्ण दो बार आता है तो बहुधा उच्चारण की सुविधा के लिये उनमें से एक वर्ण को छोड़ दिया जाता है, और तदनुसार ही उसे लिखा जाने लगता है। इस प्रवृत्ति को भाषा–विज्ञान में समवर्ण–लोप कहा जाता है। कुछ संस्कृत शब्दों में भी, जो कालिदास द्वारा भी प्रयुक्त हुये हैं, यह प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

पाश्चात्त्य–पाश्चात्य

''पाश्चात्तय'' वि0 शब्द ''पश्चात्'' शब्द में ''त्यक्'' प्रत्यय लगकर बना है –पश्चाद् भवः पाश्चात्तयः। इसका अर्थ है–''पीछे का'', ''पश्चिम का''। कालिदास ने ''पाश्चात्तय'' शब्द का प्रयोग ''पश्चिम दिशा का'' अर्थ में किया है –

सङ्.ग्रामस्तुमुलस्तस्य पाश्चात्त्यैरश्वसाधनैः। रघु0 4.62

''पाश्चात्त्य'' शब्द एक त् का लोप होकर अब ''पाश्चात्य''लिखा जाने लगा है।मोतीलाल बनारसी दास द्वारा प्रकाशित रघुवंश के संस्करण में ''पाश्चात्य'' ही लिखा मिलता है। आप्टे ने अपने कोश में ''पाश्चात्य'' शब्द दिया है। आजकल हिन्दी में तो ''पाश्चात्य'' ''पश्चिमी'' अर्थ में व्यापक रूप से प्रचलित है।

क्षत्य–क्षत्र

संस्कृत में ''क्षत्त्र'' शब्द ''क्षत्रिय'' अर्थ में प्रचलित रहा है। कालिदास ने इसकी व्युत्पत्ति प्रस्तुत की है –

क्षताद् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्त्रस्यशब्दो भुवनेषुरूढ़। रघु0 2.53
कालिदासके अनुसार व्युत्पत्ति है –क्षत् = नाश, विपत्ति + त्रै+क।

कालिदास की कृतियों में अन्य कई स्थलों पर ''क्षत्त्र'' शब्द का प्रयोग हुआ है–

क्षत्त्रकोपदहनार्चिषं ततः संदधे दृशमुदग्रतारकाम्। रघु० ।।.69
क्षत्त्रजातमपकारवैरि मे तन्निहत्य बहुशः शमं गतः। रघु0।।.71
असंशयं क्षत्त्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः । शाकु0। .22

''क्षत्त्र'' के एक त् का लोप होकर ''क्षत्र'' लिखा जाने लगा है। उपर्युक्त ग्रन्थों के किन्हीं संस्करणों में ''क्षत्त्र'' के स्थान पर ''क्षत्र'' पाठ मिलता है। आप्टे ने अपने कोश में ''क्षत्र'' शब्द ही दिया है। कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जो संस्कृत में समवर्ण–लोप–युक्त रू‍प में पर्याप्त प्रचलित हैं।

पत्त्र– पत्र

''पत्त्र''नपुं0 शब्द ''पत्र'' रूप में व्यापक रूप से प्रचलित हो गया है। संस्कृत में इसका प्रयोग ''पत्ता'', ''पंख'', ''चिट्ठी'' आदि अर्थों में मिलता है। यह शब्द कालिदास की कृतियों में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, अतः इसके प्रयोग के उदाहरण देना अनावश्यक समझा गया है। अष्टा0 3. 2. । 82 के अनुसार इसे ''पत्'' धातु से ''ष्ट्रन्'' प्रत्यय लगकर निष्पन्न माना जाता है, अतः मूलतः यह ''पत्त्र'' शब्द था। मोनियर विलियम्स ने इसे अपने कोश में ''पत्त्र'' ही लिखा है, किन्तु आप्टे ने अपने कोश में ''पत्र'' लिखा है। स्पष्टतः ''पत्त्र'' के एक त् का लोप होकर यह ''पत्र'' के रूप में प्रचलित हो गया है।

वर्ण–विपर्यय

जब किसी शब्द के दो वर्ण एक–दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हो जाते हैं, तो इसे ''वर्ण–विपर्यय'' कहते हैं। कालिदास द्वारा प्रयुक्त शब्दों में भी वर्ण–विपर्यय का उदाहरण मिल जाता है।

नालिकेर–नारिकेल

संस्कृत में ''नारियल'' के लिये ''नारिकेर'', ''नारिकेल'', ''नालिकेर'' आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। मोनियर विलियम्स ने अपने कोश में ''नारिकेर'' शब्द के प्रयोग के लिये सुश्रुतसंहिता आदि का, ''नारिकेल'' शब्द के प्रयोग के लिये महाभारत आदि का, और ''नालिकेर'' शब्द के प्रयोग के लिये सुश्रुतसंहिता, काव्यों आदि का उल्लेख किया है।

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में 4 . 3 के पश्चात् ''नालिकेर'' शब्द का प्रयोग किया है –तेन ह्येतस्मिंश्चूतशाखावलम्बिते नालिकेरसमुद्गक एतन्निमित्तमेव कालान्तरक्षमा निक्षिप्ता मया केसरमालिका। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के किसी–किसी संस्करण में इस स्थल पर ''नालिकेर'' के स्थान पर ''नारिकेर'' या ''नारिकेल'' शब्द का प्रयोग मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के राघवभट्ट की

व्याख्या के साथ प्रकाशित निर्णयसागर प्रेस, मुंबई के 1958 के संस्करण में तथा एम0आर0 काले के मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 1969 के दसवें संस्करण में ''नालिकेर'' शब्द ही मिलता है, अतः ''नालिकेर'' से युक्त पाठ ही अधिक प्रामाणिक प्रतीत होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि अमरकोश 2 . 4 . 168 में ''नालिकेर'' शब्द ही मिलता है –नालिकेरस्तु लाड्.गली।
ऐसा प्रतीत होता है कि ''नालिकेर''के स्थान पर ''नारिकेल'' वर्ण–विपर्यय की प्रवृत्ति के कारण अर्थात् ल्के स्थान पर र् और र् के स्थान पर ल् होकर प्रचलित हुआ। ''नारिकेर'' ल् के स्थान पर र् हो जाने से प्रचलित हुआ।

रघुवंश में ''नारिकेल'' शब्द मिलता है –
नारिकेलासबं योधाः शात्रवं च पपुर्यशः ।

इस प्रकार दूरवर्ती व्यन्जन–विपर्यय होकर कालिदास की रचनाओं में ''नालिकेर'' और ''नारिकेल'' दोनों मिलते हैं।

मात्रा–भेद

कभी–कभी किन्हीं शब्दों में, व्यवहृत होते–होते मात्रा–भेद हो जाता है, अर्थात् ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ–स्वर अथवा दीर्घ–स्वर के स्थान पर ह्रस्व स्वर प्रयुक्त होने लगता है। मात्रा–भेद की इन प्रवृत्तियों को दीर्घीभाव तथा ह्रस्वीभाव कहा जा सकता है। ये प्रवृत्तियां बड़ी स्वाभाविक हैं। इनके मूल में कभी तो मुख–सुख कारण होता है, कभी अज्ञान कारण होता है, कभी उच्चारण की त्रुटि कारण होती है, तो कभी श्रवण की अपूर्णता। मात्रा–भेद हो जाने पर शब्द का जो कुछ भिन्न रूप प्रचलित हो जाता है, बहुधा वह भी चलता रहता है और पूर्ववर्ती रूप भी।कभी–कभी उन दोनों को प्रचलित देखकर वैयाकरण तदनुसार ही अपनी भाषा के व्याकरण के नियमों में संशोधन कर लेते हैं। कभी–कभी उन दोनों में से कोई एक रूप व्यापक प्रचलन में आ जाने के कारण प्रचलित रह जाता है।

दीर्घीभाव

जिन संस्कृत शब्दों में व्यवहृत होते–होते कालान्तर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ स्वर हो गया है, वे कई प्रकार के हैं–

1. इकारान्त उपसर्ग से युक्त शब्द,
2. इकारान्त से ईकारान्त होने वाले प्रातिपदिक,
3. मध्य में दीर्घ होने वाले प्रातिपदिक,
4. जानबूझकर किये गये दीर्घ स्वर के प्रयोग।

इकारान्त उपसर्ग से युक्त शब्द

कुछ ऐसे शब्दों में, जिनमें उपसर्ग इकारान्त था, उपसर्ग के इकार का दीर्घीभाव हो गया है, अर्थात् उनमें इकार के स्थान पर ईकार हो गया है। यह प्रवृत्ति पाणिनि के काल से भी प्राचीन है। कुछ शब्दों में इकारान्त उपसर्ग को दीर्घ हुआ देखकर ही पाणिनि ने इस वर्ण–परिवर्तन को नियमित करने के लिये यह सूत्र बनाया होगा – उपसर्गस्य घन्यमनुष्ये बहुलम् –''घञन्त उत्तरपद के परे होने पर उपसर्ग को बहुलता से दीर्घ हो जाता है, यदि समुदाय का वाच्य मनुष्य न हो'' अष्टा0 6.3.122। इस नियम के अन्तर्गत जो शब्द आते हैं और जिनमें ह्रस्व इ के स्थान पर दीर्घ ई का प्रयोग कालिदास की कृतियों में भी मिलता है, यहाँ कुछ ऐसे प्रयोग दिये जा रहे हें।

अधिकार –अधीकार

संस्कृत में ''अधिकार'' पुं0 शब्द ''देखभाल'', ''कार्यभार'', ''कार्य'', ''शासन'', ''स्वत्व'' आदि अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। यह शब्द ''अधि'' उपसर्ग–पूर्वक ''कृ'' धातु से घञ् प्रत्यय लगकर निष्पन्न है। कालिदास ने अधिकतर तो ''अधिकार'' शब्द का ही प्रयोग उपर्युक्त कई अर्थों में किया है, तथापि कालान्तर में विकसित तथा अष्टा0 6.3.122 द्वारा भी विहित ''अधीकार'' शब्द का भी प्रयोग किया है।

अधिकार

अधिकारे मम पुत्रको नियुक्तः । मालवि0 अड्.क 5
अविश्रमौयं लोकतन्त्राधिकारः। शाकु0 5.3 के पश्चात्
अधिकारखेदं निरूप्य । शाकु0 5.5 के पश्चात्
तुल्योद्योगस्तव दिनकृतश्चाधिकारो मतो नः । विक्र0 2.1

अधीकार

स्वागतं स्वानधीकारान्प्रभावैरवलम्ब्य वः । कुमार0 2.18

परिताप – परीताप

संस्कृत में ''परिताप''पुं0 शब्द ''अत्यधिक गर्मी'',''पीड़ा, वेदना'' अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। यह शब्द ''परि'' उपसर्ग–पूर्वक ''तप्'' धातु से घञ् प्रत्यय लगकर बना है। विकास के परिणामस्वरूप अष्टा0 6.3. 122 द्वारा भी विहित उपसर्ग के इकार को दीर्घ होकर यह ''परीताप'' के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है, यद्यपि कालिदास ने अधिकतर''परिताप'' का प्रयोग किया है, तथापि ''परीताप'' का प्रयोग भी मिल जाता है।

परिताप

शमयति परितापं छायया संश्रितानाम्। शाकु0 5.7
गुरूपरितापानि न ते गात्राण्युपचारमर्हन्ति । शाकु0 3.15
प्रसक्ते निर्वाणे हृदय परितापं व्रजसि किम् ।मालवि0 3.1

परीताप

आदधाना परीतापमवाप व्योमवाहिनी । कुमार0 10.39

सन्दर्भ

1. कुमारसम्भवं महाकाव्यम् सं० एवं व्याख्याकार पं० शेषराज शर्मा रेग्मी, प्रथम संस्करण, 1987, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
2. अभिज्ञान शाकुन्तलम् – सं०डा० कपिलदेव द्विवेदी, पंचम संस्करण, 1969, रामनारायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद।
3. कालिदास – ग्रन्थावली – सं० सीताराम चतुर्वेदी, तृतीय संस्करण
4. मालविकाग्निमित्रम् – सं० तारिणीश झा, प्रथम संस्करण, 1964, रामनारायण लाल बेनीप्रसाद, इलाहाबाद।
5. मेघदूतम् – सं० डा० संसार चन्द्र तथा पं० मोहनदेव पंत, अष्टम संस्करण, 1983, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली।
6. रघुवंशम् – व्याख्याकार, आचार्य धारादत्त मिश्र, द्वितीय संस्करण, 1987, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
7. भाषा विज्ञान – डॉ० कर्णसिंह, साहित्य भण्डार, मेरठ (उ०प्र०)